Chapter-2

द्वितीय परिच्छेद

I. प्रतीक नाटक: पृष्ठभूमि एवं परिचय

II. भारतेन्दु युग से पूर्व की नाट्यकृतियाँ

III. भारतेन्दु युग के नाटक:-

(क) संस्कृत के अनूदित नाटक

(ख) रूपान्तरित नाटक

(ग) मौलिक नाटक

4. प्रसाद युग

5. प्रसादोत्तर युग और उसके प्रमुख नाटक

6. प्रतीक नाटकों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि

7. संस्कृति समाज इतिहास और राजनीति का अन्तर्सम्बन्ध

8. साहित्य सर्जना का मनोवैज्ञानिक पक्ष तथा संस्कृति, समाज और राजनीति से साहित्यकार का प्रेरित होना ।

9. वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य

§1§ प्रतीक नाटक पृष्ठभूमि एवं परिचय:-

काव्य शास्त्र के पण्डितों और साहित्य के मनीषी विद्वानों ने साहित्य की विविध विधाओं में नाटक को महत्वपूर्णस्थान दिया है। रीति सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य वामन ने "सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः" कहकर नाट्य साहित्य का प्रबन्ध आदि काव्य साहित्य की विधाओं से श्रेयस्कर बताया है। वामन के अनुसार आख्यायिका आदि काव्यों के पठन-पाठन में रमणीयता, रोचकता एवं का होना आवश्यक है। इसके बिना नाटकीयता नहीं आती है। जिसके फलस्वरूप प्रसंग अरुचिकर लगते हैं। आचार्य अभिनव गुप्त ने भी "अभिनव भारती" में नाट्य साहित्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। नाट्य शास्त्र के प्रणेता आचार्यभरत मुनि तथा कविराज राजशेखर नेनाट्य साहित्य को पंचमवेद की संज्ञा से अभिहित किया है 3भरतमुनि के अनुसार नाटक में मानव मन की गहराइयों में उतरकर रचनाकार उसके दुःख दर्द, आशा निराशा, पीड़ा, खीझ, हास-, उल्लास आदि मनोभावों को स्थापित करता है 4. इसके साथ साथ उसके सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक विचारों को अभिनय का रूप देता है। प्रसिद्ध नाट्य प्रणेता कविवर कालिदास ने नाटक को चर्चा करते हुए उसे एक प्रयोग मूलक कला माना है। 5. मालविकाग्निमित्रम् में भी प्रयोग प्रधानम् हि नाट्य शास्त्रम् कहकर उसी बात पर ही बल दियाहै।

§2§ भारतेन्दु युग से पूर्व की नाट्यकृतियाँ :-

आचार्यभरतमुनि ने वेदों को ही नाटक की उत्पत्ति का मूलाधार माना है। 6.पाश्चात्य विचारक मैक्समूलर लेवी डा. हर्टल आदि भी नाटक का उदय वैदिक ऋचाओं के गान से मानते हैं। स्वाभाविक है, कि नाटकीय संवादों की प्रेरणा इन्हीं कथोपकथनों से मिली

हों, परन्तु यह तथ्य है, कि संस्कृत और प्राकृत भाषाओं जो नाट्यरचनायें हुई, उसका मूलाधार भरत मुनि का नाट्य शास्त्र ही है । पाश्चात्य-विद्वानों ने अश्वघोषके ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व संस्कृत नाट्य रचनाओं की विशाल परम्परा मौजूद है । जिसमें भास का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है । अश्वघोष के बाद के नाटककारों में शूद्रक, कालिदास, हर्ष, भवभूति, विशाखदत्त, भट्टनारायण, राजशेखर आदि प्रसिद्ध हैं । परन्तु आगे चलकर प्राकृतकाल में संस्कृत की नाट्य परम्परा क्षीण दिखायी देती है । प्राकृतभाषा में लिखेगये अधिकांश नाटक सट्टक की श्रेणी में आते हैं । प्राकृत केप्रमुख सट्टकों में कर्पूरमंजरी, रंभामंजरी, चन्द्रलेखा, श्रृंगारमंजरी, तथा आनन्दसुन्दरी है । इनमें राजशेखरी की "कर्पूरमंजरी" को विशिष्ट स्थान प्राप्त है । इसके बाद प्राकृत भाषा में चल रही नाट्य परम्परा काप्राय: लोप ही दिखायी देता है । संस्कृत के साहित्यिक और प्राकृत के जननाटकों के फलस्वरूप हिन्दीनाटकों का प्रादुर्भाव हुआ । ये लोक नाटक स्वांग जात्रा, कीर्तनियाँ पाला, विदेशिया, रास, नौटंकी, भाषाई, भाण, झूमर, ढोला, मारू, तमाशा, वीथी, आदि नामों से आज भी जाने जाते हैं । विद्यापति ने मैथिलि भाषा में कई नाटकों की रचना कीथी, जिसमें "गोरक्ष-विजय" आज भी उपलब्ध है ।
7. इसके अतिरिक्त मैथिली भाषा में गोविन्द विरचित नलचरित्र, नाटक, देवानन्द, विरचित, उषाहरण, रमापति, उपाध्यायविरचित "रुक्मिणी हरण" आदि प्रसिद्ध है । भक्तिकाल में "रासलीला" नाटकों की परम्परा का प्रारम्भ हुआ। जिसका मूलभूत केन्द्र ब्रज प्रदेश रहा । रास लीला नाटको में नन्ददास की गोवर्धनलीला, श्याम-सगाई लीला, तथा ध्रुवदास, वृन्दावनदास ब्रजवासी दास की रचनायें विशेष उल्लेखनीय है ।

वस्तुत: इस रासलीला प्रधान नाटकों में भक्ति नृत्य और गान का प्राधान्य था तथा इनकी भाषा भी संस्कृत प्रचुर ब्रज थी । सत्रहवीं तथा अठारहवीं

शताब्दी के आस-पास इस प्रकार के नाटकों में रामायण, महानाटक, हृदयराम कृत हनुमान नाटक, बनारसीदासकृत समयसार गुरुगोविन्दसिंह कृत चंडीचरित्र यशवन्तसिंह कृत प्रबोध चन्द्रोदय प्रसिद्ध हैं। इसी समय कुछ और नाटकों की चर्चा दिखायी देती है, जिनमें नेवाजकृत शकुन्तला नाटक, कृष्णजीवन-लच्छीराम कृत करुणाभरण का नाम मुख्य है। इसके उपरान्त उन्नीसवीं-शताब्दी में माधव विनोद: नाटक, जानकी रामचरित नाटक, नहुष नाटक, आनन्द रघुनन्दन नाटकों की रचना हुई। इन नाटकों में आनन्दरघुनन्दन नाटक की रचना हुई। इन नाटकों में आनन्द रघुनन्दन और नहुष को श्रेष्ठ नाटक के रूप में सराहना मिली। परन्तु इन नाटकों की भाषा ब्रज और शैली काव्यात्मक थी। इस प्रकार भारतेन्दु से पूर्व लिखे गये नाटकों की कोई निश्चित परम्परा नहीं दिखायी देती। ये सब नाटक प्राय: संस्कृत नाटकों एवं पौराणिक आख्यानों के रूपान्तर मात्र परिलक्षित होते हैं। इस प्रकार हिन्दी नाटकों का वास्तविक विकास भारतेन्दु युग से ही प्रारम्भ होता है।

3. भारतेन्दु युग के नाटक:- 1850 से 1900ई.

भारतेन्दु युग के नाटक, राष्ट्रीय भावना और भारतीय संस्कृति से ओत प्रोत होने के कारण भारतीय जनमानस में बड़ी गहराई के साथ छा गये। इसलिए इस काल को राष्टीय जागरण तथा नव सांस्कृतिक चेतना का उन्मेष युग के नाम से जाना जाता है। भारतेन्दुजी ने इस युग का नेतृत्व किया, तथा समकालीन नाटककारों के लिए प्रेरणास्रोत बने रहे। इनके नाटकों में लोकमंगल की भावना के साथ-साथ राष्ट्र प्रेम सामाजिक न्याय, उदारता, की भावना सर्वोपरि है। 8. भारतेन्दु जी ने तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के अनुरूप, प्राचीन -

परम्परा और संस्कृत नाट्य शिल्प को अपना प्रेरणास्रोत बनाया। इस युग के नाटककारों ने भी भारतेन्दु जी का अनुसरण किया। यही कारण है, कि इस युग के नाटककारों ने पौराणिक,प्रेमप्रधान,सामाजिक,प्रतीकात्मक एतिहासिक नाटकों का सृजन किया। इस युग के नाटकों की कथावस्तु का आधार संस्कृत नाटकों की तरह रामऔर कृष्ण के लीला विषयक ग्रन्थ रामायण,महाभारत श्रीमद्भागवत आदि है।

इस युग के नाटकों का मूलभूत उद्देश्य समाज सुधार और सामाजिक समस्याओं को जनजीवन तक पहुचाना रहा है। इन नाटकों में गौरक्षा,अहिंसा परमोधर्म:,धार्मिकरीति, रिवाजों का जहाँ एक ओर समर्थन मिला है, वही पर पाखण्ड,भ्रष्टाचार तथा सामाजिक कुरीतियों का एक मूलभूत उद्देश्य समाज सुधार तथा सामाजिक व राजनैतिक समस्याओं को जनजीवन तक पहुँचाना है। इसयुग के अधिकांश सामाजिक नाटक प्रहसन के रूप में देखने को मिलते हैं। भारतेन्दु युगीन नाटककारों में भारतेन्दु हारश्चन्द, प्रताप नारायणमिश्र, बालकृष्ण-भट्ट, श्रीनिवास दास, राधाचरण, गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, औरअम्बिका दत्त व्यास आदि मुख्य हैं। भारतेन्दु जी ने तीन प्रकार के नाटक लिखे हैं:-

(क) संस्कृत के अनूदित नाटक :-

संस्कृत से हिन्दी में अनूदित नाटकों में रत्नावली नाटिका, पाखण्ड विडम्बन,प्रबोध चन्द्रोदय, धनंजय विजय, कर्पूरमंजरी,मुद्राराक्षस, आदि नाटक है। भारतेन्दु जी ने संस्कृत बंगला और अंग्रेजी नाटकों का अनुवाद केवल हिन्दी का भण्डार भरने के लिए नहीं किया अपितु इन नाटकों से अनपेक्षित परिवतन काप्रचार किया।

अंग्रेजी से अनूदित भारतेन्दु युग में अंग्रेजी के कुछ महत्त्वपूर्ण नाटकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया, सन् 1875 मेंजोसेफ एडीसन के "केटो" का

केटो कृतान्त नाम से अनुवाद किया गया। इसी काल से शेक्सपियर के मर्चेन्ट आफ वरनेस, कमेडी आफ एरसन, तथा रोमियो जुलियट का नाटक एज यू लाइक इटका अनुवाद प्रस्तुत किया गया। अनुवादकों में बालेश्वर प्रसाद, दयालसिंह, ठाकुर रतनचन्द, जयपुर के पुरोहित गोपीनाथ, प्रेमघन, मथुरा प्रसाद, पं. बद्री नारायन आदि का नाम उल्लेखनीय है।

(ख) रूपान्तरित नाटक:-

भारतेन्दु जी के रूपान्तरित नाटकों में विद्यासुन्दर और सत्य हरिश्चन्द आते हैं। विद्यासुन्दर चौरपंचासिका का रूपान्तरण या छायानुवाद है, जिसके माध्यम से भारतेन्दु जी ने प्रेम विवाह को अधिकाधिक श्रेयस्कर मानकर एक अधुनातन समस्या की ओर संकेत कियाहै। इनका सत्यहरिश्चन्द भी छायानुवाद है, इसमें भारतेन्दु जी ने सामाजिक विकृतियों और पाखण्डों से उपर उठकर सत्य के आदर्शों से अनुप्राणित होने का आवाहन किया है।

(ग) मौलिक नाटक:- भारतेन्दु जी के मौलिक नाटकों में प्रेमजोगिनी, विषस्य विषमौषधम्, चन्द्रवली, भारत दुर्दशा, भारत जननी, नीलदेवी, अन्धेरनगरी, और सतीप्रताप नाटक है। इनमें से प्रेमयोगिनी, सतीप्रताप, विषस्य विषमौषधम् अधूरे हैं। इनमें से अन्धेरनगरी और भारतदुर्दशा अन्यापदेशिक नाटक हैं। जिन्हें हम प्रतीक नाटक कह सकते हैं। भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों के कथा-संयोजन और वस्तु विन्यास में नवीनता का सहारा लिया है। संस्कृत-नाटकपरम्परा में अगाध विश्वास करते हुए भी वे पाश्चात्य नाटकों की सरल तथास्वच्छन्द नाट्य शैलीको अपनाने में जराभीसंकोच नहीं करते। भारतेन्दु जी की चारित्रसृष्टि कीप्रमुख देन यह है, कि उन्होंने संस्कृत कीपरिपाटी पर बंधे बंधाये या परम्परागत चरित्रों कोस्थान न देकर दलाल, गंगापुत्र, भंडेरिया

कुजड़िन, कवि, एडीटर, जैसे पात्रों का सृजन किया । इन पात्रों का चयन संस्कृत परम्परा से हटकर एक क्रान्तिकारी कदम है । प्राय: भारतेन्दु युग के सभी नाटककार प्रगतिशील मध्यवर्ग के थे । अत: सामाजिक, राजनीतिक, और राष्ट्रीय यथार्थ ही इनके नाटकों का विषय वस्तु बना ।

§4§ प्रसाद युग:-§1901 से 1936§

हिन्दी नाट्य साहित्य के क्षेत्र में प्रसाद युग का आरम्भ एक नये अध्याय के साथ जुड़ता है । हिन्दी नाट्य जगत में वे एक युग के प्रवर्तक कलाकार के रूप में जुड़े । उन्होंने संस्कृत नाट्य शास्त्र के रस सिद्धान्त पाश्चात्य नाटकों के भाव संवेदन, को अपनाकर अपनी प्रतिभा के समन्वय से एक नये युग की स्थापना की जिसे प्रसाद युग के नाम से जाना जाता है । इन्होंने स्वच्छंदतावादी अभिनव नाट्य कला कोजन्म दिया । प्रसाद युग के नाटककारों ने अपने नाटकों के गुम्फित हुए वस्तु विन्यास के लिए विचारों या भावों की अभिव्यक्ति को माध्यम बनायाऔर वस्तु चरित्र , रस, टैकनिक तथा वातावरण में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया । प्रसाद जी ने सन् 1910 से नाट्य रचना की शुरूआत कीथी,और सन् 1933 तक अनवरत रूप से लिखते रहे, इन्हीं चौबिस वर्षों में उन्होंने कुल 13 नाटक लिखे, जिनमें सज्जन,प्रायश्चित कल्याणी, परिणय, करूणालय, राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जन्मेजय, का नागयज्ञ कामना, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, एक घूंट ध्रुवस्वामिनी आदि मुख्य हैं । इसके अतिरिक्त इनके नाटकों में यशोधर्म अप्रकाशित तथा अग्निमित्र अपूर्णनाटक हैं । प्रसाद युगीन अन्य नाटककारों मेंहरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्दवल्लभपन्त, सुदर्शन, सेठगोविन्ददास, बेचनशर्मा उग्र, तथा जगन्नाथ प्रसादमिलिन्द हैं । ये नाटककार पौराणिक एतिहासिक तथा सामाजिक, वस्तुविन्यास का चित्रण करते हुए आधुनिक जीवन और युगीन समस्याओं के प्रति सजग रहे हैं । ये नाटककार प्रसाद की हीभाँति भारत की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय गरिमा को उजागर

करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं, तथा भारतीय एवं पाश्चात्य नाटकीय परम्परा के समन्वय की चेष्टा करते रहे हैं ।

प्रसाद युगीन नाटक प्रायः प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ और द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य लिखे गये । सन् 1914 से 1918 तक का समय संसार की अस्थिर राजनीतिक सांस्कृतिक तथा वैचारिक टकराहट का समय था । प्रसाद युगीन नाटककारों में भारतीय साहित्य संस्कृत और राष्ट्रीय गरिमा का अनुभूति प्रवण आवेग था । इन नाटककारों ने अपने नाटकों में शैली मैत्री राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता जनजागरण, की भावना को जन्म दिया । कहीं-कहीं इस युग के नाटकों में राष्ट्रीयता का स्वरूप आक्रामक हो उठा है । इसके दो मूलभूत उद्देश्य है एक तो राष्ट्रीय भावना को देश के गौरव और स्वातन्त्र्य रक्षा की ओर मोड़ना और दूसरा विदेशी आक्रमण के समय देश की रक्षा की भावना को दृढ़ करना । भारत की अखण्ड राष्ट्रीयता का स्वप्न प्रसाद युग में खुलकर अभिव्यक्त हुआ है । जहाँ पर विदेशी शासक, प्रादेशिकता विभिन्न धर्मों सम्प्रदायों तथा भाषाओं, में विभेद बताकर संघर्ष करवा रहे थे, वहाँ पर इस युग के नाटककारों ने इन संकीर्णताओं का डटकर विरोध किया उन्होंने बलपूर्वक यह स्थापित किया कि अखण्ड राष्ट्रीयता तथा धर्म सम्प्रदायों और भाषाओं की एकता के बिना देश की स्वतन्त्रता न तो प्राप्त की जा सकती है, और न देश के गौरव और सांस्कृतिक विरासत को बचाय रखा जा सकता है । हरिकृष्ण प्रेमी ने रक्षाबंधन शिवा-साधना, स्वप्नभंग, आहुति आदि नाटकों में एकता का प्रतिपादन किया है । यही नहीं प्रसाद युग के राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी जागरण का स्वर भी प्रमुख था । प्रसाद के अतिरिक्त-प्रेमी, मिलिन्द, सेठ गोविन्ददास आदि ने नारी की दयनीय स्थिति को अपने नाटकों में अभिव्यक्ति दी, विदेशी पात्रों के मुख से भारतीय गरिमा का ~~इसका~~ ज्ञान कराया । इस प्रकार भारत की राजनीतिक और सामाजिक चेतना का जो रूप उभर रहा था, प्रसाद युग के नाटककारों ने उसमें प्राचीन

भारतीय संस्कृति का गरिमा का समावेश करके उसे जीवन्त बना दिया। प्रसाद के पश्चात भी उनकी परम्परा में अनेकनाटकों का सृजन हुआ, जिनमें रामवृक्षबेनीपुरी, सीताराम चतुर्वेदी, और आचार्य चतुरसेन शास्त्री प्रमुख हैं। इन नाटककारों ने ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की रचना करके इस परम्परा को जीवित रखा। इसके बाद एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। जिसे प्रसादोत्तर युग केनाम से जाना जाता है।

4. प्रसादोत्तर युगऔर उसके प्रमुख नाटक (1937 से अब तक)

प्रसाद युग के बाद वातावरण और जीवन की यथार्थता से आधुनिक हिन्दी नाटककारों को एक नई दिशामिली।10. इस काल मेंअनेकानेक प्रवृत्तियों का अभ्युदय हुआ जिन्हें हम मानवतावादी, आदर्शवादी, सुधारवादी, समाजवादी, साम्यवादी, यथार्थवादी, बुद्धिवादी, व्यक्तिवादी, प्रतीकवादी आदि के नाम सेजानते हैं। इसके साथही इसी युग ने विभिन्न वादों का भीजन्म दिया, जिन्हें मनोविश्लेषणवाद, यौनवाद, आत्माभिव्यंजन वाद, स्वाविधान वाद, प्रकृतिवाद, एवं प्रभाववाद आदि नामों से जाना जाता है। प्राय: यह देखा जाता है कि पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण स्वरूप पौराणिकनाटकों के प्रति लेखकों कीरुचि भी कम हो गयी, चारों ओर उनके अनेक समस्याओं ने जन्म लिया, इस युग में पाश्चात्य नाटकों की यथार्थवादी चेतना से प्रभावित होकर भावुकता और रोमांस की प्रतिक्रिया में अनेकानेक समस्या नाटक लिखे गये। आचरण एवं विश्वास सम्बन्धी रूढ़िवादीमान्यताओं एवं धर्म सम्बन्धी खोखले आदर्शों के प्रति बौद्धिक विद्रोह ने अनेकानेक नाटकों का जन्म दिया। जिन्हें प्रतीकवादी नाटक के नाम से भीजाना जाने लगा मनुष्य की मूलत: भूख और कामजनित इच्छाओं में यौनकुंठाओं और उलझनों

का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इन नाटकों के माध्यम से किया जानेलगा । हिन्दी में इन समस्यानाटकों के प्रवर्तक लक्ष्मी नारायण मिश्र माने जाते हैं । इसीलिए उनके नाटकों में प्रेम विवाह, काम, और नारी समस्या के चित्रण अधिकांश रूप में अनेक मिलते हैं । इसकेअतिरिक्त इस युग में अनेक ऐसे नाटकों की रचनायें हुई हैं, जिनमें सामाजिक समस्याके साथ साथ राजनैतिक समस्याओं कोअभिव्यक्ति मिली । प्रसादोत्तर युगीन नाटकों की यह सबसे बड़ी विशेषता था, कि वह नवीन टेकनिक और स्वच्छन्द कला को लेकर अवतरित हुआथा । पाश्चात्य नाट्य शिल्प से अधिक प्रभावित होने के कारण यह युग नांदीपाठ, भरतवाक्यप्रस्तावना गीत एवं नृत्य आदि प्राचीन प्रयोगों से दूर था । इन नाटकों मेंप्रस्तावना के स्थान परकिसी उद्देश्य या सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए विस्तृत भूमिकायें दी गयी । इन नाटककारों ने एकदृश्य से दूसरे दृश्य कोजोड़ने वाली बीच की कथा को कमेन्ट्री के रूप में रखा । और सूत्रधार की जगह कमन्टेटर कोस्थान दिया गया । अंक विभाजन की दिशा मेंभी नाटककारों ने नवीन दृष्टिकोण अपनाये । पाँच अंकों की जगह दो या तीन अंकों का नाटक लिखा जाने लगा । कुछ नाटककारों ने अंकदृश्य योजना विहीन नाटक अधिक उपयुक्त समझे । और उनका सृजन किया । आधुनिक जीवन सन्दर्भों, राजनैतिक, सामाजिक, समस्याओं, के सम्प्रेषण के लिए पौराणिक एवं ऐतिहासिक पात्रों कोअपने नाटकों में स्थान दिया । मजदूर किसान क्लर्क अध्यापक, व्यापारी सुधारक, नेता, वकील, डाक्टर आदि सभीवर्गों के पात्रों को अपने नाटकों में स्थान दिया । पात्रों में मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व को दिखानेके लिए प्रतीकों का सहारा लियागया । पात्रानुकूल और संक्षिप्त संवादोंकी रचना पर अत्यधिक ध्यान दियागया । इस युग में एकांकी, अनेकांकी, रेडियोनाटक गीतिनाटक, और प्रतीक नाटक, के अतिरिक्त नृत्य नाट्य छायानाटक संगीतरूपक एकपात्रीय नाटक, स्किट, लघुनाटक, सिने नाटक, आपेरा,

भावनाट्य आदि नवीन टेकनिकों के विकास का प्रयत्न किया गया।

संस्कृत नाट्य शास्त्र में वर्णित सूत्रधार नांदी, विष्कंभक, प्रस्तावना आदि सभी का बहिष्कार इन नाटकों में देखा जा सकता है। इन नाटककारों ने व्यक्ति और समाज की समस्याओं का परिचय देकर बौद्धिकता पर बल दिया मनोवैज्ञानिक खोजों से भी चरित्रांकन की नई प्रणाली का सृजन हुआ। फ्रायड की कामसम्बन्धी धारणाओं ने यौनकुंठाओं को जन्म दिया। इस युग के नाटक कारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, विनोद-रस्तोगी, मन्नू भण्डारी ज्ञानदेव अग्निहोत्री डा॰ लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, रमेश मेहता, मुद्राराक्षस, शंकर शेष, रमेश बक्षी, बृजमोहन शाह, दया प्रकाश सिन्हा, डा० सुरेश चन्द्र, शुक्ल आदि मुख्य है, इन नाटक-कारों ने आज के स्त्री पुरूष के बीच पनपरही पशुता जंगलीपन, उसके व्यवहारों विचारों, और मानसिक विकारों से परखने का प्रयास किया। यह पशुता उसके विचारों व्यवहारों, मानसिक विकारों, या यौन सम्बन्धी कहीं भी हो सकती है। और उसके भीतर उभरता हुआ पशुमन, साँप बिच्छू, शेर चीता भेड़िया, तेंदुआ, सियार, कुत्ता हाँथी, हिरन, गीध, शुतुरमुर्ग, कुछ भी हो सकता है। स्त्री पुरूष के बीच इसी उभरते हुए पशुमन ने पारिवारिक, राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना को भी धराशायी कर दिया यही मूल कारण है जिससे आज के रचनाधर्मी स्त्री, पुरूष के बीच उभरते हुए पशुमन को शुतुरमुर्ग तीसरा हाथी, तिलचट्टा, चतुर्भुज, राक्षस, नरसिंह, कवा, कुत्ते, तू-तू, नागपाश, भस्मासुर, अभी जिन्दा है। हंस और घोड़ा आदि अनेकों नाटकों में प्रयुक्त पशुप्रतीकों और उनमें निहित व्यंजनाओं को उभारने का प्रयास किया है, आदमी के पशुमन को व्याख्यायित करते हुए पशु प्रतीक और साथ ही उसके शीर्षक भी दिये गये हैं। चरित्रों के रूप में पशुओं की भूमिकायें भी दी गयी हैं, और व्यंग्य द्वारा मनुष्य के वर्तमान जीवन पर एक प्रश्नचिन्ह लगा दिया

गया है। निश्चय ही मानवमूल्यों का यहविघटन पशुप्रतीकों के माध्यम से एक वास्तविक शिल्प चेतनाहै । इन्हीं रचनाओं मेंजहाँ मुद्राराक्षस का ॥ तेंदुआ सम्पन्नवर्ग की यौनकुंठा, हिंसक भावना, विकृत मनोवृत्तियाँ एवं अतृप्त वासनाओं काप्रतीकहै, वहीं पर रमेशबक्षी का तीसरा हाथी पुरानी मान्यताओं का प्रतीक है। जिसे सब मिलकर एक साथगिराने कायत्नकरते हैं । अंधा कुआँ मेंसूका की समस्या व्यक्तिगत न होकर हर भारतीय ग्रामीण नारी की समस्या है । नाट्य रचनाकारों ने अपने नाटकीय चरित्रों को प्रतीक बनाने के लिए विशिष्ट नाम न देकर उन्हें जातिगत सम्बोधनों से अभिहित किया है । जैसे आधे-अधूरे, में पात्रों कानामनदेकर कालेसूट वाला आदमी, पुरुष एक,पुरुष दो, पुरुष तीन, पुरुषचार, स्त्री, बड़ी लड़की, छोटालड़का, तथालड़काकहा है । शुतुरमुर्ग नाटक में रचना कार ने पात्रों का नाम राजनीतिक दृष्टि से रखा है, राजारानी, रक्षामंत्री, भाषामंत्री, महामंत्री, विरोधी लाल, मामूलीराम, तथा मरता हुआ आदमी आदि प्रतिनिधियोंसे नाम देकर हिन्दी नाट्य विधा मेंप्रतीक नाटकों को और बढ़ायाहै । तू-तू नाटक में आस्तानंद सदासिंह ने चाचा को नेतावर्ग का प्रतीक बनाकर उसकेचमचों कोबुलडौग, स्लतेसियन, आदि कुत्तों, कोविभिन्न जातियोंसे अभिहितकिया है,इस प्रकार नवानप्रवृत्ति के इन नाटकोंमें पात्रों काकोईअस्तित्व नहीं है । मादा कैक्टस नई प्रतीक शैली को जन्म देने वालायहनाटकहै, जो वैचारिक संघर्षकेजरिये अर्थ के अनेक स्तर खोलता हुआ केन्द्र को सतह तक पहुंचता है । समकालीन नाट्य साहित्य रचनाओं में अपने ढंग के इसअनोखे नाटक मेंवनस्पतिशास्त्र की प्रक्रिया के आधार पर स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को लेकर रचनाकार ने एक नयी खोज प्रस्तुतका है। आधेअधूरेके सभी पात्र आधुनिकमनुष्य के खण्डित व्यक्तित्व क प्रतीकहैं । कमरे में तीन तरफ से झांकने वाले दरवाजे तीन पुरुषों के प्रतीक हैं । जिनसे होकर सावित्री भाग जाना चाहती है । अधटूटा टी सेट, अस्तव्यस्तपड़ी चीजे, फटी किताबें, टूटाकुर्सियाँ, चरित्रों के अधूरेपन तथाटूटते हुए पारिवारिकसम्बन्धों

के प्रतीक हैं ।

यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है, कि समकालीन युगमें लिखे जा रहे ऐसे प्रतीक नाटकों का जन्म प्रतीक वादी आन्दोलन के फलस्वरूप हुआ "पश्चिम के सांकेतिक प्रतीक पद्धति की देखादेखी हिन्दी में भी इसीप्रकार के नाटकलिखे जाने लगे । पूर्वपरम्परा के नाटकों का प्रारम्भ तो बहुत पहले प्राप्त होता है । परन्तु यथार्थवादी समस्याओं के चित्रण में सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग प्रसादोत्तर युग सेही होता है। ऐतिहासिक चरित्रों को प्रतीक मानकर इस युग केरचनाकारों ने सत्ता कुर्सी और राजनीतिक छल को अपना केन्द्र बिन्दु बनाया, और नयी नयी अभिव्यंजनायें प्रस्तुतकी । जिसके फलस्वरूप प्रतीक नाटकों काजन्महुआ । मानव जीवन के गूढ रहस्यों यौन भावनाओं, संवेदनाओं एवं संकीर्णताओं कोसही एवं सचोट अभिव्यक्ति देने के लिए परम्परा सेहटकर जिस नया रचना शैली या रचना धर्मिता को बढ़ावा मिला । उसे केवल नाटक न कहकर प्रतीक नाटक कहा जाने लगा । "हिन्दीके आधुनिक प्रतीक नाटकों में संस्कृत के नाट्य रूपकों के समान दार्शनिक तथा धार्मिक विवेचन न होकर पाश्चात्य विचार धारा के अनुकूल मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी एवं सामाजिक समस्याओं का विवेचन अधिक है । [2] जहां पर त्रिशंकु, शम्बूक की हत्या, रस गंधर्व, द्रौपदी, कथा एक कंस की एकऔरद्रोणाचार्य, आदि नाटक पौराणिक प्रतीकों पर आधारित है । वहीं पर कर्फ्यू आधे-अधूरे सेंदुआ कुत्ते, तू-तू, शुतुरमुर्ग, मादाकैक्टस, भस्मासुर, अभी जिंदा है, घरोंदा, चारपाई, जैसे नाटक, समसामयिक, परिस्थितियों में जन्म ले रहेलज लिजेपन मक्कारी भ्रष्टाचार, भ्रष्टरीतिरिवाजों, एवं पारिवारिक, संकीर्णताओं तथा पशुता के आधारपर प्रतीक बनकर एक नयी नाट्य परम्परा को जन्म दे रहे हैं, जिसे प्रसादोत्तर नाटक सेभिन्न समकालीन नाटक की संज्ञा से भीअभिहित किया जाने लगा है।

पहले स्पष्ट किया जा चुका है, कि समकालीन युगमें लिखे जा रहे प्रतीक नाटकों का जन्म प्रतीकवादी आन्दोलन के फलस्वरूप हुआ पश्चिम के सांकेतिक प्रतीक पद्धति की देखादेखी हिन्दी में भी इसीप्रकार के नाटक लिखे जाने लगे। पूर्वपरम्परा के नाटकों का प्रारम्भ तो बहुत पहले प्राप्त होता है। परन्तु यथार्थवादी समस्याओं के चित्रण में सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग प्रसादोत्तर युग में ही होता है। ऐतिहासिक चरित्रों को प्रतीक मानकर इस युग के रचनाकारों ने सत्ता कुर्सी और राजनीतिक छल को आक्रमण के बिन्दु बनाया, और नयी नयी अभिव्यंजनायें प्रस्तुत की। जिसके फलस्वरूप

6. प्रतीक नाटकों की सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पृष्टभूमि:-

प्रतीक नाटकों की सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पृष्टभूमि पर विचारकरे इसके पहले प्रतीक नाटक की विधा पर प्रकाश डालना आवश्यक हो जाताहै। नाट्य सृजन का किसी भी विधा का समुचित स्वरूप उसके पर्याप्त अध्ययन और आलोचना का परिणाम होता है।आधुनिक प्रतीक नाटकों के अनुशीलन के क्षेत्र मे प्रयास नही के बराबर हुआ है।अभी तक जितने भी प्रयास देखने को मिला है, वे सभी पुरानी प्रतीक शैली में लिखे गये प्रतीक नाटकों को दृष्टि में रखकर लिखे गये है। आधुनिक प्रतीक नाटक अभी तक वर्गीकरण की प्रक्रिया से अछूते हैं।

डा. दशरथ ओझा ने प्रतीक नाटकों को इस प्रकारस्पष्ट किया है- "प्रतीकात्मक या भावात्मक नाटकों का कई श्रेणियां होती है, इनमें से मुख्य तीन है। प्रथम श्रेणी में नाटक की स्वाभाविक या प्रस्तुतकथा एक रसात्मक होती है। उस कथा के नाम, रूप तथा गुण साम्य के द्वारा जो रहस्यमय अर्थ आद्योपात परिलक्षित होता है वह भी चमत्कार पूर्ण होने से विज्ञजनों का आनन्द विधायक होता है। ....इसप्रकार का नाट्क विद्यासुन्दर है। दूसरी कोटि में वे नाटक आते हैं, जिनके प्रस्तुत और स्वाभाविकअर्थ में इतना चमत्कार नही होता जिनका प्रतीक का अर्थ समझ लेने पर अप्रस्तुत अर्थ मेंप्रतीत होता है। संस्कृत का "प्रबोध चन्द्रोदय" ऐसा नाटक है, तीसरी श्रेणी में मिश्र प्रतीकात्मक नाटकों की है। इसमें कतिपय पात्र मानवीय होते हैं। कतिपय मानवीकरण के रूप में दृष्टिगत होते हैं। ....चैतन्य चन्द्रोदय इसी कोटि का नाटक है। ।3. इस प्रकार के वर्गीकरण से तीन प्रकार के प्रतीक नाटकों का बोध होता है। एक वे जिनकी प्रस्तुति और अप्रस्तुत दोनों कथायें रसात्मकहोती हैं। दूसरे वे जिनकी प्रस्तुति कथा साधारण और दुहरे अर्थ में आने वाली अप्रस्तुतकथा चमत्कार पूर्ण होती है।

---71।

तीसरे मिश्र प्रतीकात्मक नाटक है । जिनमें मानवी और मानवीकृत दोनों प्रकार के पात्र होते हैं । डा०श्रीपति शर्मा ने प्रतीक नाटकों के दो रूप उद्धृत किये हैं । "एक तो मनुष्य की भावना औरअन्तः वित्तीयाँ मानवीकरण रूप में पात्रों का आकार धारण करके हमारे सामने आती हैं । रूपक का यही स्वरूप " प्रबोध चन्द्रोदय या मोरेलिटी नाटकों में मिलता है । रूपक का दूसरा रूप जिसमें चरित्र साधारण स्त्री और पुरूष होते हैं परन्तु उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं होता है वे भावनाओं के प्रतीक मात्र हैं । ।4. रमेश गौतम के अनुसार " हिन्दी में उपलब्ध नाटकों का अनुशीलन करने पर विषय वस्तु और स्वभाव की दृष्टि से आलोच्य नाटकों को निम्नरूप से वर्गीकृत किया जा सकता है ।

1. रूपात्मक या मानवीकरण की प्रवृत्ति को लेकर चलने वाले प्रतीक नाटक

2. ऐतिहासिक पौराणिक या मिथकीय आयाम को लेकर चलने वाले प्रतीक नाटक।

3. समस्या प्रतीक नाटक । ।5.

प्रतीक नाटकों से सम्बन्धित उपर्युक्त तीनों वर्गीकरण में प्रथम दो वर्गीकरण केवल भारतेन्दु और प्रसाद युग में प्रतीक नाटकों को एकदृष्टि में रखकर किये गये हैं । तीसरा वर्गीकरण हिन्दी के प्रारम्भिक सीमित प्रतीक नाटकों के अनुशीलन पर आधारित है । कथावस्तु चरित्र रंग कौशल और आशील्पन की दृष्टि से हिन्दी में प्रतीक नाटकों की उपलब्धियाँ पर्याप्त हो गयी है औरप्रतीक नाटकों का सृजन नित्य नये प्रयोगशील रूप में हो रहा है । हिन्दी में इनका भविष्य उज्जवल है । यह प्रयोग शील प्रतीक नाटकों का ही युग है । इन्हें उपेक्षित करके प्रतीक नाटकों पर कोई भी अध्ययन, अनुशीलन अधूरा कहलायेगा । दूसरे प्रतीक नाटकों का कोई भी वर्गीकरण अन्तिम

---72

नहीं होसकता है । क्योंकि यह एक सृजनशील विधा है । शिल्पऔर वस्तु

14. डा. श्रीपति शर्मा शर्मा हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव पृष्ट 374
15. रमेश गौतम सातवें दशक के प्रतीक नाटक पृष्ट 27

दोनों को दृष्टि में रखकर हिन्दी के प्रतीक नाटकों का विभाजन निम्नलिखित रूप में भी किया जा सकता है।

1. समग्र रूपात्मक प्रतीक नाटक:-

संस्कृत की पुरानी प्रतीक शैली पर लिखेगये हिन्दी के भारतेन्दु युगीन सम्पूर्ण प्रतीक नाटक इसश्रेणी में रखे जासकते हैं। इसमें इन कालों के समानान्तर नाटक, प्रमुख प्रतीक नाटक, और मिश्र प्रतीक नाटक आते हैं भारत दुर्दशा, छलना, धर्मानाथ, कामना, ज्योतिना, वासना वैभव, असत्य संकल्प आदि नाटक इस वर्ग के हैं ।

2. आंशिक प्रतीक नाटक:-

इब्सन और बर्नार्ड्स आदि नाटककारों सेप्रभावित पश्चिम के समस्यामूलक आंशिक प्रतीक शैली के नाटकों का देखादेखी हिन्दी में भी आंशिक प्रतीक नाटक लिखे गये । सेठ गोविन्द दास का " प्रकाश इस श्रेणी का पहला नाटक है छठाबेटा स्वर्ग कीझलक और उड़ान सुबह के धरे, रेशमी गांठ, रूपया तुम्हें खा गया आदि इस वर्ग के प्रतीक नाटकहैं ।

3. अन्योक्ति मूलक प्रतीक नाटक:-

इस प्रकार के प्रतीक नाटकों में वस्तु "पौराणिक अथवा ऐतिहासिक होती है । वस्तुयोजना ऐसे नाटकों में इस प्रकारकी जाती है अन्योक्ति के माध्यम से इससे किसी आधुनिक महापुरुष घटना सन्दर्भ या देशकाल काबोध होता है । जैसे पहला राजा, नाटक का सम्पूर्णवृत्य ,

नेहरू और नेहरू युगीन देशकाल का बोध देता है ।

4. प्रवृत्तिमूलक प्रतीक नाटक:-

इस श्रेणी के नाटकों में भी वस्तु" ऐतिहासिक अथवा पौराणिक होती है लेकिन उन पात्रों के कार्यकलाप को एक शाश्वत प्रवृत्ति का रूप देकर उन्हें सार्वयुगीन बनाया जाता है । ऐसे नाटकों में लहरों के राजहंस तथा एक कंठ की यक्ष प्रश्न, प्रजा ही रहने दो, सूर्यमुख, कलंकी आदि नाटक उल्लेखनीय हैं ।

5. सांकेतिक प्रतीक नाटक:-

इस श्रेणी के प्रतीक नाटक बहुत ही सशक्त होते हैं इनमें कथावस्तु आधुनिक होती है और साथ आधुनिक विसंगतियों को सम्प्रेषित करती है । इन नाटकों में एक महत्वशाली प्रतीत पौराणिक अथवा आधुनिक प्रमुख सूत्ररूप में ग्रहण कर लिया जाता है वह प्रतीक ही पूरी रंग प्रस्तुति में लक्ष्य को निरन्तर संकेतिक करता रहता है । शुतुरमुर्ग, त्रिशंकु, द्रौपदी, कुत्ते, धोआस, आदि नाटक इसश्रेणी में आते हैं ।

6. प्रतिनिधित्व प्रतीक नाटक:-

इस प्रकार के नाटकों में किसीपुरातन विख्यात कथा या चरित्र के समानान्तर आधुनिक कथा याचरित्र को साथ साथ विकसित किया जाता है । " एक और द्रोणाचार्य" इस श्रेणी का नाटक है हिन्दी में इस प्रकारके नाटक बहुत कम लिखे गये हैं ।

7. समानान्तर प्रतीत नाटक:-

हिन्दीमें इसश्रेणी के श्रेष्ठ नाटकों की संख्या बहुत अधिक है इस प्रकारके नाटकों में चरित्र ही अपने वर्ग के प्रतीत होते हैं।

और सम्पूर्णरूप से एक आधुनिक सन्दर्भ को उजागर करते हैं । कोणार्क, बिना दीवारों का घर, कर्फ्यू, नरमेद, आधे अधूरे मादा कैक्टस, आकाश झुक गया, सिंहासन खाली है, शाह ये मात, आदि महत्वपूर्ण नाटक इस श्रेणी के हैं ।

8. एब्सर्ड नाटक:-

यह प्रतीक नाटकों का ही एक विकसित नाट्य शिल्प है, इस प्रकारके नाटकों कीवस्तुभी था और अभिव्यंजनाका आशिल्पन बिल्कुल उन्मुक्त और नवीन है ।" असंगत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को अधिक व्यक्त करते हैं इनमें परम्परागत मूल्यों के प्रति आस्था नहींहै । जीवनकी विद्रूपता और विकृतियों को ये अपना आधार बनाते हैं । ।6. यीर्स फैबुली, तिलचट्टा, तेंदुआ, मरजीवा, अमृतपुत्र, अब्दुल्ला दीवाना, शम्बूक की हत्या, रस गन्धर्वआदि इस श्रेणी के महत्वपूर्ण नाटक हैं ।

वस्तुत: हिन्दी के प्रतीक नाटक जीवन की वास्तविकता को अधिक सशक्त ढंग से सम्प्रेषित करने में बहुत सफल हुए हैं हिन्दी साहित्य के नाट्य रंग आन्दोलन कोभी इनसे काफी बल मिला है । नये नाट्य प्रयोगों कीदिशा में प्रतीक नाटक अग्रसर है । उनकी प्रयोग शील उपलब्धियों की सम्भावनायें सम्प्रति बढ़ती ही जा रही है ।

साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में नाटक का सम्बन्धसमाज की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से घनिष्ट रूप से रहता है नाटक अवस्था का अनुकरण होने के साथ साथ सर्जना की स्थिति में पेक्षणीयता केदबाव में परिवर्तितहुआकरता है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक कीकथावस्तु के सम्बन्ध में विचार करते हुए कहा है कि जिस समय श्रोता जन जैसा, ग्रहण करें नाटककार को उसी के अनुरूप विषयवस्तु का प्रयोग करना चाहिए । ।7.श्रोता या सहृदय की रूचि और मांग के अनुसार नाटक शिल्प में जिस परिवर्तन की संस्तुति भारतेन्दु जी ने की है, प्रकारांतर से वह साहित्य के सांस्कृतिक बोधका

अनुगामी परिवर्तन है । साहित्यकार समाज में जीवन जीने के साथ साथ उसकी विभिन्न परिस्थिति तथा घात प्रतिघातों का अनुभव अन्तर्मन में करता है सर्जना के समय इसी लिए सृजन वाह्यता सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति तथा आन्तरिक रूप में कलाकार मनःस्थिति से प्रभावित होता है, प्रसिद्ध कवि और विचारक गजानन माधव मुक्तिबोध ने इसी लिए साहित्य सर्जना को सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का मिश्रित रूप बताया है साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने स्पष्ट ढंग से साहित्य को समाज का दर्पण कहा है । और समाज एक ऐसी परम्परा का वहन करता है, जो कालसापेक्ष, प्रकारान्तर से इतिहास सापेक्ष होती है इसलिए साहित्य का समाज से, समाज का संस्कृति से, संस्कृति का इतिहास से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है हिन्दी नाटकों की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का मूल्यांकन करने के क्रम में हम इन वायवीय मूल्यांकन और प्रभावकारी तत्वों में से एक एक का विवेचन करना अधिक उपयुक्त समझते हैं । 18.

संस्कृति समाज इतिहास और राजनीति का अन्तर्सम्बन्धः-

साहित्य की व्युत्पत्ति में हा सहित अर्थात एकत्र होने का भाव, सहसम्बन्ध तथा हित अथवा कल्याण की लोकमंगलकारी अर्थवत्ता सन्निहित है । साहित्यकार का दायित्व इसी लिए समाज की समष्टिगत हित साधना और उसको भावात्मक एकता के सूत्र में जोड़ने का होता है साहित्य सृजन के पूर्व साहित्यकार विषयवस्तु के रूप में इतिहास से संस्कृति से पौराणिक आख्यानों से अथवा लोक जीवन में व्याप्त दन्त कथाओं और रुचियों से सहायता लेता है । संस्कृति सामान्यतः लोक संस्कार मानवीय सभ्यता और जनजीवन की परम्परा को धारण करा करती है । इसलिए संस्कृति में पूर्ण परम्परा इतिहास की घटना रूप में न होकर उसकी - परवर्ती प्रक्रिया के रूप मे होती है । अतीत में विभिन्न देश जाति और धर्म के लोगों

से भारतवासियों का जो सम्बन्ध सम्पर्क हुआ उसी का समान्वित रूप है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर की स्थापना के समर्थन में भारतीय संस्कृतिको महामानव समुन्द्र कहा है। ।9. इसका तात्पर्य यह है कि शक पहल्लव, हूण, और अनार्य जातियों के आगमन के उपरान्त परस्पर सांस्कृति आदान प्रदान विभिन्न सभ्यताओं का परस्पर प्रभाव तथा धर्म एवं साधना कीसमन्वित प्रक्रिया, जिससे जिस मानव समुद्र का निर्माण हुआ है, उसमें अनेक जातियों, उपजातियों के रीति रिवाज आस्था धर्म साधना कला आदि का सम्मिश्रण है इसी प्रकार विश्व के अन्य देशोंकी संस्कृतियाँ और वहाँ की साहित्यिक सर्जना भी तद्नुरूप असर हुई है । तुलसी ने भारतीय संस्कृति का समन्वय या सेक्सपियर के नाटकों में रोम यूनान और यूरोपिय देशों की संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है । साहित्य कासर्जना ने साहित्य कार कायेतना उसके मानसिक धरातल से प्रेरितऔर उसकी अनुभूतियों से निर्मित होती है । कलाकार का अन्तर्जगत कला मेंशिल्प विधि प्रेषणीयता तथा सौन्दर्य दृष्टि केरूप में परिणित होता है । साहित्य का नाटक एक कला के रूप में सृजित होता हैतथा उसकी अर्थवत्ता या प्रेषणीयता अभिनेता या भाव ग्राह्यता के रूप में सहृदय द्वारा स्वीकारी जाती है । सृजन निर्मित कलात्मकता और सौन्दर्यानुभूति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व समाज से अनुभव रूप में ग्रहण किये जाते हैं संस्कृत का परम पारस्परिक मानवीय समाजिकरुचि विश्वास समझ तथा धर्म का प्रतिफलहै । संस्कार मानव के रुचि स्वभाव प्रकृति और उसके खानपान तथा व्यवहारको परिचालित और प्रभावितकरता है आचरण की सभ्यता और सभ्यता का सांस्कृतिक पक्ष मानव जीवन में ही व्याप्त होता है इसलिए जब साहित्यकारअथवा कलाकार रचना करने का उपक्रम करता है तो उसका यह प्रयास एक व्यक्तित्व में अपने जीवन से सामाजिक प्राणी रूप में समाज से तथा एक रचनाकारके रूप में सम्पूर्ण मानवीय संस्कृति से जुड़ा होताहै । संस्कृति को सामान्यतः सभ्यता का अतीत रूप माना जाता है । वाह्य या प्रायोगिक रूप में जो सभ्यता है, आन्तरिक

या सैद्धान्तिक रूप में वही संस्कृति है। मानवीय सोच चिन्तन, सम्प्रग्राहयता भाषा तथा परस्पर व्यावहारिक सम्बन्ध संस्कृति के अंग हुआ करते हैं। साहित्यकार का सर्जनात्मक रूप चाहे यश से अर्थकृते व्यवहार विदे, हो अथवा अशिव से समाज की रक्षा या कान्तासम्मित उपदेश युक्त वाणी हो, किन्तु उसमें तीन पक्ष का होना अनिवार्य है। प्रथम पक्ष है, सृजनाकार, दूसरा पक्ष है सहृदय श्रोता या गृहीता, और तीसरा पक्ष है रचना या निर्मित और उसका सौन्दर्य बोध। संस्कृति का दाय तीनों पक्ष समान रूप से देखा जाता है। अज्ञेय जब यह कहते हैं, कि हम नदी के द्वीप हैं, धारा वही है, तो उनका यह कथन उस संस्कृति के प्रति स्थिर समर्पण है। इसी धारा के माध्यम से सार्थक होता है। और परवर्ती पंक्तियों में उस स्रोतास्विनी द्वारा कूल सैकत, गोलाई, और आकार की निर्मित को संस्कृति की देन स्वीकार करने में भी यही धारणा है, कि रचनाकार रूप में अज्ञेय स्वयं एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो द्वीप हैं। नदी के और नदी संस्कृति की स्रोतस्विनी है एक ओर यह मानना कि हम स्रोतस्विनी की देन है, और दूसरी ओर यह चिन्ता भी, कि-स्रोतस्विनी ही कीर्तिनाशा, कर्मनाशा, चिरकाल प्रवाहिनी होकर जिस मानवीय अस्तित्व को भौतिक रूप में परिवर्तित करती है, उसमें फिर नये-व्यक्तित्व का आकार खड़ा होता है। अज्ञेय के इस काव्यात्मक कथन में द्वीप से आशय है रचनाकार या व्यक्ति का और धारा से आशय है, संस्कृति की धारा। पीछे यह कहा जा चुका है, कि साहित्यिक सर्जना में तीन आयाम हुआ करते हैं, प्रथम आयाम है, रचनाकार, का जो सामान्य व्यक्ति की तुला में अधिक कल्पनाशील चिन्तनाभिराम विचारक भावुक तथा काल्पनिक दृष्टि से युक्त होता है उसकी चेतना उसके जीवन का प्रतिरूप होती है। और जीवन है व्यक्तित्व रूप में निर्मित तथा सामाजिक, पारिवारिक तथा ऐतिहासिक प्रभावों से निर्मित आकार साहित्यकार का चेतन जगत उसके अवचेतन से भी प्रभावित होता

है, और उसकी रचना एक सहज क्रियाहोने के साथ साथ कभी कभी असहज अथवा प्रतिक्रियाभी होती है । अद्यतन समीक्षा में साहित्यकार के माध्यमसे उसके साहित्य और साहित्य के समाज शास्त्र का अध्ययन एक सापेक्ष प्रक्रियाहै, जिसमें साहित्य में आगत समाज का भौतिक और आर्थिक रूपभी प्रतिबिम्बित होता है ।

सर्जनाएक दूसरा आयाम ग्रहीता या साधनहोताहै, सहृदय भी उसी समाज का प्राणी होता है जिस समाज से रचयिता का सम्बन्धहोताहै, इसलिए रचनाकार और सहृदय कोजोड़ने वाला समाज है। सहृदय को साहित्य शास्त्र में अनुभूतिसम्पन्न विचार सम्पन्न,सुरूचि सम्पन्न, तथा दृष्टि और समझ से युक्त मानाजाता है । रचनाकेवल स्वान्त: सुखाय न होकर परान्त: सुखाय या बहुजन हिताय भीहोतीहै । साहित्यकार साहित्य का लक्ष्य सामाजिक प्राणी या सहृदय होता है,यहीकारण हैकि जब जब सामाजिक रूचि भाषा, संस्कार, औरग्राह्यता मेंपरिवर्तन हुए हैं, तब तब साहित्य का सौंदर्य कला पक्ष शिल्पविधि तथा विषयवस्तु मेंभी परिवर्तन होता गया है ।

तीसरा और सबसेमहत्वपूर्ण आयाम, साहित्य का सर्जना गत रूप है, जिस प्रकार साहित्यकार ग्रहीता को जोड़नेवाला समाज होता है, उसी प्रकार दोनों केबीच वैचारिक आदान प्रदान भावग्रहण रूपात्मकता सौन्दर्य और कलागत दृष्टि का माध्यम सर्जना हुआ करती है । सजना मेंतन्त्र या तत्व के रूप में विषयवस्तु कथ्य उद्देश्य तथा चिंतन एवं सौन्दर्य के रूप में बिम्ब प्रतीक भाषा, अलंकृति, चमत्कार आदि तत्व विद्यमान रहतेहैं । रचनाका तन्त्र जहाँ रचनाकार की चेतना और मानसिक क्रिया का प्रतिफल हुआ करताहैवहाँ उसका सौन्दर्य पक्ष अनुभूति कल्पना तथा रूचि से जुड़ता है ।

रचना,रचनाकार और सहृदय के पक्ष में साहित्य का अवलोकन करने पर यह धारणाबनतीहै, कि साहित्य की सर्जना सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में

होता है। और यह सर्जना समाज के दो पक्षों (सर्जक और गृहीता) के बीच एक ऐसा माध्यम होती है, जिसमें साहित्यकार स्वयं पात्र या चरित्र रूप में भोक्ता बनकर उपस्थित होता है, और अपनी अनुभूति को सहृदय को प्रभावित करना चाहता है। सर्जक और गृहीता का संस्कार जिस प्रवाहित धारा से पात्रों के रूप में किया गया होता है, वह संस्कृति अज्ञेय के शब्दों में स्रोतस्विनी और टैगोर के शब्दों में महामानव समुद्र है।

(ख) व्यक्ति एकाकी रूप में समाज की इकाई तथा समवेत रूप में कुटुम्ब समाज और राष्ट्र का अंग होता है, इसलिए व्यक्ति के आचरण, कार्य सामाजिक और पारिवारिक गतिविधियाँ राष्ट्र और समाज के साथ उसके सम्बन्ध इतिहास बनकर आनेवाली पीढ़ी के लिए आदर्श बन जाते हैं। इस प्रकार इतिहास राजनीति समाजशास्त्र, और मनो. का संस्कृति से गहरा सम्बन्ध है। नाटकीय पात्रों की व्यक्ति रूप में गतिविधियाँ जहाँ उसके पात्र परिकल्पना के रूप में अंकित की जाती है, वहीं सामूहिक रूप में पूरे नाटक की विषय वस्तु बनकर उसकी संस्कृति का ऐतिहासिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि का आधार बनती है। नाटक और उसके ऐतिहासिक तथा राजनीतिक पक्ष पर विचार करने से पूर्व एक एक करके समाज, इतिहास, राजनीति तथा मनोविज्ञान के योगदान पर विचार करना आवश्यक है।

सामान्य रूप में समाज व्यक्तियों का समूह माना जाता है, जबकि समाज केवल मानव का ही नहीं, पशु और पक्षियों का यहां तक कि वनस्पतियों का भी होता है। नाटकीय विषय वस्तु में समाज के अन्तर्गत पाश्चात्य विचारक अरस्तू की प्रकृति भी आ जाती है। त्रासदी के विवेचन में अरस्तू ने विवेचन विषयवस्तु और चरित्र के परस्पर सम्बन्ध पर विचार करते हुए प्रकृति के योगदान को कला का आधार बताया है। कला की परिभाषा में आनेवाली प्रकृति अरस्तू की व्याख्या में:- जैसे वह थी या है, जैसी वह कहीं सुनी और

——80

समझी जाती है, अथवा जैसी वह हो सकती है, का रेखांकन कियागया था जब हम नाटकीय समाज का रूप विषयवस्तु में देखना आरम्भ करते हैं तो समाज शास्त्र के समाज से नाटक के समाज को किंचित व्यापक रूप में ग्रहण करना पड़ता है । क्योंकि मानवीय कार्य का सम्बन्ध बाह्यत: समाज से और आन्तरिक रूप में मनोविज्ञान से हुआ करता है जब नाट्य कला और उसके सर्जक पक्ष पर सापेक्ष रूप में विचार किया जाता है, तो नाटककार के साथ साथ उसके समाज की संरचना पर भी ध्यान दिया जाता है । नाटकों की रचना के आरम्भ में प्रत्येक रचना के साथ देश-काल और वातावरण पर विचार कियाजाता था और यह प्रतिमान न केवल नाटक अपितु उपन्यास और कहानी की समीक्षा का भी आधार माना जाता है। मार्क्स वादी समीक्षा पद्धति के यथा तथ्य वादी आचार्यों ने साहित्य का समाज शास्त्र अधुनातन प्रतिमान क रूप में स्वीकारा और पश्चिम की नई समीक्षा पद्धति में इसे एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया । नाटक के अन्तर्गत आने वाला समाज पात्रों का एक ऐसा समूह है जहाँ ऐतिहासिक घटनायें, राजनीतिक परिवर्तन, वैचारिक क्रान्तियाँ तथा मनो- क्रियायें सम्पादित होती है। समाज की सोसल सम्बन्धी धारणें रीति रिवाज परम्परा अनुकरण गतानुगतिकता तथा वातावरण का माध्यम होता है। मनोविज्ञान में व्यक्तित्व निर्माण के लिए हारडिटी (वंशानुक्रम) और इन्वानमिन्ट का योगदान स्वीकारा जाता है । नाटक के साथ जब हम समाजका उल्लेख करते है तोवह समाज का व्यक्तित्व निमाण में इन्वानमिन्ट या पात्र योजना में देश और काल तथा समष्टिगत रूप में कला की सांस्कृतिक प्रक्रिया का रूप होता है अत: ऐसे समाज में रचनाकार सहृदय तथा अध्येता का रहना और उस समाज के माध्यम से नाट्य सृष्टि के तत्व का आकलन नाटक की सांस्कृतिक प्रक्रिया के अन्तर्गत किया जाता है ।

आलोच्य विषय के अन्तर्गत इतिहास और राजनीति को भी प्रतीक

नाटकों को पृष्टभूमि समझने के लिए आधार बनाया गया है इसलिए समाज के साथ साथ इतिहास और उसकी घटनाओं का सापेक्ष सम्बन्ध भी देखना आवश्यक है । इतिहास और काव्य कला में भेद करते हुए अरस्तू ने कहा था कि इतिहास घटी हुई घटनाओं का समूह है, और इतिहास के विपरीत काव्य कला में सम्भाव्य या कल्पित घटनायें भी स्थान पाती है । इसीलिए अरस्तू ने इतिहास को रूढ़ियों से युक्त तथा काव्यकला को सम्भाव्य घटनाओं और परिकल्पनाओं से युक्त माना था, डा. जान्सन ने अरस्तू के विचारों का उल्लेख करते हुए कहा है, कि "अरस्तू ने कहा है इतना ही पर्याप्त नहीं है यदि उन्होंने हमारे युग के नाटकों को देखा होता तो उन्होंने अपने विचार बदल दिये होते ।" यद्यपि डा. जान्सन ने यह स्थापना अरस्तू के प्लाट और चरित्र के महत्व के सम्बन्ध में कही था, किन्तु आधुनिक नाटकों के मूल्यांकन में जब इतिहास के महत्व पर विचार करना है तो यह भी अरस्तू की स्थापना के विपरीत यह कह सकते हैं, कि अब इतिहास का अर्थ केवल घटित घटनाओं को लेखा जोखा ही नहा है ।

इसी प्रकार "प्रसाद" के नाटकों की ऐतिहासिक व कथावस्तु की आलोचना करते हुए पं. लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अपने समस्या नाटकों को उनकी तुलना में श्रेष्ट बताते हुए यह कहा कि मैं इतिहास के गड़े मुर्दे नहीं उखाड़ता हूं । श्री मिश्रजी के विचारों से प्रसाद के नाटकों में इतिहास का आगमन केवल पुरानी घटनाओं के प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित है तथा उनके समस्या नाटकों का सम्बन्ध इतिहास की तुलना मे समाज से अधिक निकट तर है । समकालीन नाटकों में ऐतिहासिक और सामाजिक अन्तर्सम्बन्धों में श्री मिश्र की स्थापना से सहमत होकर यह स्वीकार किया जा सकता है, कि प्रतीक नाटक अधिकतर समाज सापेक्ष ही होते हैं । किन्तु जहां तक नाटकों से इतिहास के सम्बन्ध का प्रश्न है, निश्चय ही नाटक परम्परा से प्रेरणा लेते

समय इतिहास से ही प्रेरणा लेते हैं ।

इतिहास का अतीत से, पूर्व संस्कृति से तथा बीते जीवन की सामाजिक औरराजनीतिक और घटनाओं से निकट का सम्बन्धहोताहै । ट्रेडीसन ऐण्ड् इन्डविजुअट टैलेन्ट नामकनिबन्ध में प्रसिद्ध समीक्षक और विचारक टी॰ एस॰ इलियट ने रचनाकार की प्रतिभा को स्वतन्त्र बताते हुए भी उसे पूर्व परम्पराओं से और भी प्रभाव कारी होना बताया है । इसनिबन्ध में उन्होंने यह भी कहा है कि साहित्य का सर्जक अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से बहुतकुछ ग्रहण करता तथा उसे अपनी कृति के अनुरूप ढालता और परिवर्तित करता है । सूक्ष्मता से विचार करने पर पूर्व का इतिहास तथा रचना की प्रेरणाबनता है, जब उसमें कालजयी होने की शक्ति विद्यमान रहती है इतिहास का यह प्रेरणा दायकरूप नाट्य कला की संस्कृति पृष्टभूमि के रूप में नाट्य शिल्प तथा सौन्दर्य दृष्टि की परम्परा के रूप मे ग्रहण किया जाता है । कालिदास शेक्सपियर तथा प्रसाद के नाटकों मे इतिहास का योगदान नाट्य समीक्षा का प्रचलित दृष्टिकोण है । मौर्य और गुप्त शासकों केशासन काल की अनेक घटनाओं में जो इतिहासमें है, वह ही प्रतीकात्मक रूप मे विक्रम और वशीयन या मालविकाग्निमित्रम में पात्र योजना अथवा चरित्र सृष्टि के रूप में ग्रहण किया गया है । इसी प्रकार प्रसाद के नाटक स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, राज्यश्री, तथा ध्रुवस्वामिनी का विषयवस्तु इतिहास से ही ग्रहणकी गयी है ।

राजनीति तथा मनोविज्ञान का सम्बन्ध भी नाटकों कीविषयवस्तु पात्रचरित्रकल्पना तथा अन्तर्द्वन्द से है । राजनीति के परिवर्तित स्वरूप को समाज शासन नीति मेंपरिवतन तथा क्रान्ति के रूप में ग्रहण किया जाता है । राजनीति का ही दूरगामी परिणाम राज्य इकाई अर्थात राष्ट समाज तथा व्यक्ति के चिन्तन को प्रभावित तथा परिवर्तित करता है। सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर प्रभाव दिल्ली, सल्तनत की परिवर्तित शासननीति का जन सामान्य पर प्रभाव तथा अंग्रेजों के भारत मे आने के बाद जो भी शासननीति

में परिवर्तन हुए उनका सम्बन्ध यहाँ की साहित्यिक कृतियों से स्थापित हुआ अन्य साहित्यिक कृतियों की तुलना में नाटक अपने समय के समाज और राष्ट्र से अधिक जुड़े होते है शासन के दो पक्ष राजनीति के सम्बन्ध में दृष्टव्य है। एक शासक अर्थात राजा या शासी मण्डल का नेतृत्व करने वाला प्रमुख व्यक्ति तथा दूसरा पक्ष है शासन के अन्तर्गत आने वाले प्रजाजन सामान्य जन, तथा व्यक्ति, व्यक्तियों में से एक वर्ग ऐसा भी होता है जो शासक पक्ष से कार्य विधान को सम्पादित करने में अधिक जुड़ा होता है, जिन्हें हम शासन का अंग किन्तु प्रजाजन से सीधे सम्बन्धित रहने वाला वर्ग कह सकते हैं।

राज्य का विस्तार अथवा संकुचन राज्य का सीमा में आने वाले लोगों का सामाजिक और राजनीतिक जीवन तथा जन सामान्य का रहन सहन भाषा बोली शिक्षा दीक्षा आदि का सम्बन्ध भी राजनीति से भी होता है। शासित क्षेत्र की भाषा नीति अथवा आर्थिक नियोजन एवं औद्योगीकरण का सीधा सम्बन्ध जन जीवन से होता है। खिलजी, तुगलक अथवा मुगल शासन काल में जन सामान्य की आर्थिक दशा ने साहित्यिक कृतियों पर भी प्रभाव डाला है। इसीप्रकार अंग्रेजों की शासननीति का क्रिया अथवा प्रतिक्रिया रूप में स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम तथा महात्मा गांधी के असयोग आन्दोलन के रूप में देखा गया है। मुगल शासकों के अवसान के बाद अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव के कारण भारत में विश्वविद्यालयी शिक्षा का प्रचार प्रसार तथा देशी उद्योगों का ह्रास राजनीति या शासननीति से सम्बन्धित है। अंग्रेजों में भारत में आगमन का कारण था ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थापना के परिणामस्वरूप देश का अर्थनीति पर साधा आधिपत्य तथा यहाँ के शासकों के परस्पर वैमनस्य फूट तथा निर्बलता के कारणस्वरूप नीति का लागू किया जाना।

साहित्य संस्कृति और समाज के अन्तर्वर्ती सम्बंध के माध्यम के रूप में इतिहास समाजशास्त्र और राजनीति के माध्यम से पड़ने वाले प्रभावों की

स्थापनाके क्रम में यह कहा जा चुका है, कि नाट्य सर्जना अतीत से वर्तमान तक आने वाली सामाजिक परम्परा से सम्बन्धित होती है । समाज इतिहास और राजनीति का कार्यक्षेत्र होता है । राजनीति का घटना इतिहास बन जाती है । औरइतिहास अतीत बनकर साहित्य बोध बनता है । व्यक्तिऔर उसका समूह कुटुम्ब या समाज इतिहास की राजनीति और आर्थिक घटनाओं से प्रभावित होता तथा तज्जन्य प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करके अपने जीवतंता स्थापित करता है । नाटक विषय वस्तु रूप में इन्हीं कार्यव्यवस्थाओं का साहित्यिक रूपान्तरण होता है । प्रतीक नाटकों में प्रत्यक्षत: तो इतिहास या राजनीति में नहीं दिखायी पड़ती । किन्तु जब पात्रों की मनोवैज्ञानिक आर्थिक सामाजिक, तथा भौतिक जीवन की घटनाओं को रूपरेखांकित करना चाहतेहैं, तो हमें - इतिहास पर दृष्टिपात करना पड़ता है । और इतिहास की निर्मात्री राजनीति समाज या अर्थनीति भी इसी बहाने देखी और जानी जाती है।

समकालीन साहित्य अथवा नाटकों की समीक्षामें यथार्थवादीसमीक्षा पद्धति में समाज और व्यक्ति का सापेक्ष सम्बन्ध स्थापित करने में राजनीति और औद्योगीकरण को भी आधार बनायाजाताहै । बीसवी शताब्दी केतीसरे चौथे दशक से जब समीक्षामें यथार्थवाद को स्थान दिया जाने लगा तो यह विधायी तत्त्व और भी प्रासंगिक हो गये ।

7. साहित्य सर्जना का मनोवैज्ञानिक पक्ष तथा संस्कृति समाज और राजनीति से साहित्यकार का प्रेरित होना:-

साहित्य समाज का दर्पणहोने के नाते मनुष्य के सामाजिक जीवन में घटने वाली सभी घटनाओं का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है । चाहे वह सांस्कृतिक विघटन हो, सामाजिक विघटन हो, या राजनैतिक । आज समाज के समक्ष अनेक समस्यायें ज्वालामुखी बनकर धधक रही हैं । इन सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक समस्याओं

से झूलते हुए देश को बचाना असम्भव सा प्रतीत हो रहा है। जहाँ तक साहित्य के मनोविज्ञानिक पक्ष का प्रश्न है, आज के साहित्य पर पाश्चात्य दर्शन एवं मनोविज्ञान का पर्याप्त प्रभाव पड़ रहा है, ज्यों ज्यों भारतीय सामाजिक मान्यताओं, विचारों, आदर्शों को हम खोखला साबित करके उसे छोड़ते जा रहे हैं, त्यों त्यों पाश्चात्य विचार और दर्शन हमारे ऊपर हावी होता जा रहा है। जिससे हमारा हिन्दी नाटक साहित्य का क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा।

डार्विन के विकास वाद, बेन्थम और मिल के उपयोगितावाद, इब्सन और बर्नार्डशा के बुद्धिवाद, कार्लमार्क्स और लेनिन के साम्यवाद, टालस्टाय और रस्किन के शान्ति अहिंसा, फ्रायड, एडलर और युंग के काम और- मनोविश्लेषण वाद का समकालीन प्रतीक नाटकों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अंग्रेजी शासन और साहित्य के अतिरिक्त पाश्चात्य दर्शन, संस्कृति और विचारों का निरन्तर प्रभाव हमारी सभ्यता और संस्कृति पर पड़ता है। जिससे सामाजिक मान्यतायें बदलगयी, और हमारे विचारों, आदर्शों रहन सहन पर प्रभाव पड़ने के कारण साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन आवश्यक समझा जाने लगा।

भारतीय नाट्य साहित्य में सर्वप्रथम शेक्सपियर की नाट्यशैली का प्रभाव बंगनाट्य पर पड़ा, जिसका मूल कारण अंग्रेजों के पाश्चात्य ढंग के नाट्य मंडप की स्थापना से है। "लेबडफ" नामक रूसी यात्री ने पश्चिमी ढंग के नाट्य मण्डप की स्थापनाकलकत्ते में की, और शेक्सपियर के अतिरिक्त फ्रेन्च नाटकों का अभिनय भी वहाँ किया जाने लगा। इस प्रकार शेक्सपियर के अतिरिक्त फ्रेन्च नाटकों का अभिनय भी वहाँ किया जाने लगा। इस प्रकार शेक्सपियर कीरंगशैली का प्रभाव सर्वप्रथम बंगनाट्य साहित्य पर पड़ा औरबंगला नाटकों के माध्यम से ही हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य

प्रभाव पड़ने लगा । अंग्रेजों के आगमन से ही भारतीय नवोत्थान युग का प्रारम्भ हुआ, औरइसी युग ने सम्पूर्ण देशमें एक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक चेतना का प्रस्फुरण हुआ, जिसे पुनर्जागरण काल के नाम से भी जाना जाता है। प्रारम्भ में पाश्चात्य प्रभाव शेक्सपियर के नाटकों और उसकी रोमांस शैलियों तक ही सीमित रहा परन्तु कालान्तर में जनतन्त्र व राष्ट्रीयता, तथा अन्तर्राष्ट्रीयता तक विकसित होने के परिणामस्वरूप फ्रांस जर्मनी, रूस नार्वे बेलजियम, इटलीआदि देशों तक पहुँच गया । तथा अमरीका नाट्य परम्पराओं,यह अन्य नाट्य परम्पराओं का अध्ययन आरम्भ होने लगा । अंग्रेजी के अतिरिक्त फ्रेन्च तथा जर्मन आदि नाटकों के अनुवाद भी मूलभाषाओं के माध्यम से हिन्दी नाटककारों द्वारा किये गये । भारतेन्दु नेशेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद करके पाश्चात्य नाटकों के अनुवाद की परम्परा हिन्दीमें डाला । भारतेन्दु जी का मुख्य उद्देश्य समाज सुधार, नव जागरण, तथा सांस्कृतिक चेतना के विकास हेतु पाश्चात्य नाटकों की यथार्थवादी शैली को अपने नाटकों मेंस्वीकार कर नवीन शैली को अपने नाटकों का प्रचन किया , नीलदेबीऔर भारत दुर्दशा जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण है, और जिनसे दुःखान्त नाटकों {ट्रेजिडी} की परम्परा का उदय हुआ । द्विवेदी युग में इब्सन ,शॉ, टालस्टाय, लैसिंगगेटे, तथाशीलर मेतरलिंग, आदि अनेक नाटकोंका अनुवाद हिन्दी में हुआ । स्ट्रिन्डबर्गऔर ओनील की प्रतीकवादी तथा अभिव्यंजनावादी विचारधारा का प्रभाव हिन्दीनाटकों पर पड़ा । पारसी रंगमन्चों के सस्ते नाटको की प्रतिक्रिया स्वरूप शेक्सपियर के स्वच्छन्दतावाद को ग्रहण कर प्रसाद ने अपने नाट्य सृजन में संस्कृत तथा पाश्चात्य दोनों ही नाट्यरूढ़ियों और शैलियों को अपनाया । विषय वस्तु की दृष्टि से इस युग के नाटकों में उन्मुक्त प्रेम, दहेज, विवाह, नास्तिकता, बुद्धिवाद, व्यक्तिगत समानता,नारी स्वातन्त्र्य आदि समस्याओं का चित्रण होनेलगा । सेठ गोविन्ददास के नाटकों पर गांधी वाद तथा

टालस्टाय के अहिंसावाद का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार इस युग की रचनाओं के अध्ययन से प्रकृतिवाद ,प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद,अति-यथार्थवाद, मनोविश्लेषणवाद,अस्तित्ववाद, नई आलोचना,आदि का प्रभाव इन नाटकों पर किसी न किसी रूप में दिखायी देता है । द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जिस प्रकार युरोपिय, साहित्यसाहित्य में बेकारी, निराशा,मानसिक कुंठा, अवसाद तथा दुख का चित्रण देखा जा सकता है । इसी प्रकार हिन्दी नाट्य साहित्यमें भी उपेन्द्रनाथ अश्क,जगदीश चन्द्रमाथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मी नारायणलाल, चिरंजीव, विनोद रस्तोगी, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस, सुरेन्द्र वर्मा, आदि के नाटकों में अनैतिकता, धार्मिक अनास्था, आत्महत्या, मृत्यु तथा पागलपन काचित्रण देखा जा सकता है । फ्रायड एडलर युग के मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धान्तों काप्रभाव इन सभी नाटककारों पर बड़ी गहराई के साथ पड़ा है। 20•नाटकारों ने कामवासना सम्बन्धीमनोविकारों, मानसिक ग्रन्थियोंतथा उससे उत्पन्न रोगों का चित्रण अपने नाटकों में किया है ।

8- वर्तमान सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य किसी भी देश का साहित्य तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक धार्मिक और आर्थिकपरिस्थितियों पर निर्भर रहता है जब हम सामयिक परिस्थितियों या समकालीन नाटकों की बात करते हैं तो हमारे सामने वह सारा परिवेश आ जाता है, जिसमें आज के नाटक लिखे जा रहे हैं । लहरों के राजहंस, कलंकी, सूर्यमुख, मादा कैक्टस, शुतुरमुर्ग, कुत्ते, तेंदुआ, बिना दीवारों के घर, तीन अपाहिज, द्रौपदी, आधे-अधूरे, तीसरा हाथी, और एक द्रोणाचार्य आदि नाटकों में आधुनिक बोध के आयाम विकसित होते दिखायी देते हैं ये नाटक जिन्दगी की अनेक निर्मम औरक्रूर स्थितियों का साक्षात्कारकराते हैं ।

स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान पूरे देश महात्मा गांधी जी की विचार-

धाराओं से अनुप्राणित रहा, सत्य और अहिंसा के प्रति निष्ठावान उनकी धार्मिक भावनायें और सामाजिक नीतियाँ लोगों के जनमानस में घर करगयी। वेस्वयं हिन्दू मुस्लिम धार्मिक एकता के समर्थक थे, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के दौरान देश दो हिस्सों में विभाजित हो गया। मुस्लिम बाहुल्य प्रदेशों को एक पृथक राष्ट्र घोषित कर दिया गया जिसके परिणामस्वरूप हिन्दूमुस्लिम दंगे भड़क उठे। जिससे देश के सामने अनेकानेक समस्यायें खड़ा होगयी। जिनमें शरणार्थी की समस्या, और बेरोजगारी कासमस्या, प्रमुख थी। धर्मान्धता के कारण पाकिस्तान में हिन्दुओं का जीवन संकटमय हो गया, जिससे अशान्त होकर अपने जीवन कीरक्षा करने के लिए भारत में आ बसे। इस विभाजन का सबसे बड़ा और भयंकर दुष्परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान में हिन्दुओं का रहना असम्भव हो गया। और मुसलमानों ने हिन्दुओं को मारना, काटना, लूटना, उनके घरों में आगलगाना, और उनकी स्त्रियों का अपमान करना आरम्भ कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ होगये। इन दंगों में हजारों व्यक्ति मारे गये, और लाखों की सम्पत्ति लूटी गयी, और लाखों लोग बेघरबार और बेरोजगार हो गये। जिसमें अंग्रेज अधिकारियों तथा युरोपिय लोगों का हाथ था। 21. पाकिस्तान तथा युरोपिय लोगों का हाथथा। पाकिस्तान सेभागकर आये हुए शरणार्थी की संख्या लगभग 85 लाख थी। भारत सरकार केसामने उनके बसाने की, रोजगार की, अन्न वस्त्र का, और शिक्षा की विकट समस्या थी। जिसके लिए सरदार पटेल ने शरणार्थी सहायता कोष की स्थापना की, तथा शरणार्थियों को सरकारी संरक्षणभी प्रदान किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सरकार को इनकेबसाने मे करोड़ों रुपये खर्च करने पड़े। इसके बाद कश्मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण से देश के ऊपर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। भारतीय सेना ने कश्मीर के कुछ भाग से पाकिस्तानी कबायलियों को निकाल बाहर किया और कुछ स्थान पर

पाकिस्तानियों ने कब्जा कर लिया, जिसका मामला आज भी सुरक्षा परिषद के सामने है। स्वतन्त्रता के पश्चात लगभग कुछ देशी रियासते थी, जिनका संचालन राजा महाराजा तथा नबाब करतेथे, स्वतन्त्रता के पश्चात इन देशी रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया गया।

सन् 1951 के बाद भारत सरकार नेसामाजिक जीवन को ऊँचा उठाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यान्वयन किया। क्योंकि इसके पहले व्यक्ति के विकास की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी, प्रत्येक दृष्टि से इनका शोषण होता था। इसकेउन्मूलन के लिए नये नये कानून बनाये गये। जिसमें जमींदारी उन्मूलन, फैक्टरी कानून, न्यूनतम वेतन, कानून, बालक श्रम कानून, किरायेदारी कानून, प्रोवीडेन्ट फण्ड ऐक्ट, कर्मचारी बीमा कानून, किरायेदारी कानून आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त जीवनबीमे के कारोबार का राष्ट्रीयकरण किया, जिसमें मजदूरों के स्वास्थ्य, कारखानों के साथ-चिकित्सालय, प्रसूतिगृहों का निर्माण, प्रौढ़शिक्षा तथा विद्यालयों की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसके अतिरिक्त छुआ छूत अस्पृश्यता अधिनियम बनाया गया, तथा पिछड़ी जातियों की शिक्षा के लिए विशेष ध्यान दिया जाने लगा। इसकेअतिरिक्त ग्राम्य जीवन को उच्च स्तर पर लाने के लिए ग्राम पंचायतों का भी गठन किया गया। भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा के लिए पंचशील सिद्धान्तों को अपनाया, जिसके सिद्धान्त इस प्रकार थे, 1. दूसरे देशकी सार्वभौमिकता एवं प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान 2. अनाक्रमण 3. दूसरे देशके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, 4. समानता तथा पारस्परिक लाभ 5. शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना, इसके बाद 20 अक्टूबर सन् 1962 कोचीन के आक्रमण से फिर एक विकट समस्या से देश को सामना करना पड़ा। संसद में प्रकट किये सरकारी अनुमान के अनुसार सैनिक क्षति 6,765 थी, जिसमें 224 मृत तथा 468 घायल सैनिक शामिलथे "गायब" हुए तथा बंदी बनाये गये सैनिकों की संख्या इस प्रकार 6000 थी।

यदि हमतत्कालीन सामाजिक स्थितियों का जायजा करें तो इस समय उचित शिक्षा तथा ज्ञान के अभाव में समाज में रूढ़ि ,परम्परा, रीति, रिवाज तथा धर्म के नाम पर अनेक कुरीतियों का जन्म हुआ, जिसके परिणामस्वरूप समाज विकसित न हो सका, और विकृतियों ने समाज को अविकसित बना दिया स्त्रियों में शिक्षा के अभाव से अनेक अन्धविश्वासों का जन्म होने लगा जिससे कुरीतियों और कुप्रथाओं का जन्म हुआ, जिसे दूर करने के लिए विभिन्न सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का प्रारम्भ हुआ। इन परिस्थितियों में ईसाई मिशनरियों ने धर्म प्रचार के साथ ही समाज सेवा तथा नवीन सामाजिक विचारों के प्रचार को अपना कार्य क्षेत्र बनाया । ऐसी ही समय में समाज सुधार के विभिन्न आन्दोलन हुए, जिनमें ब्रम्हसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज, थियोसाफिकल, सोसायटी, आदि का महत्वपूर्ण स्थान है । इन सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों ने नारी शिक्षा, विधवा विवाह, पर जोर दिया, तथा जाति पाति रंग भेद बाल विवाह, आदि काडटकर विरोधकिया ।

स्वातन्त्र्योत्तर राजनैतिक परिस्थितियों ने भी ततकालीन नाट्य रचनाकारों को बड़ी गहराई के साथ प्रभावितकिया । स्वतन्त्रता के पश्चात हुए हिंसात्मक आन्दोलनों की अनेकानिक घटनायें नाटकों के कथानक बननेलगो । राजनैतिक अशान्ति और कश्मीर युद्ध के कारण उत्पन्न अनैतिकता नेदेश को अत्यन्त क्षुब्ध बना दिया । युरोपिय निराशावाद से भी भारतीय नाटक अछूता न रहा है । मंहगाई, बेरोजगारी, चोर बाजारी, मुनाफाखोरी, का समाकालीन ई नाटकों पर बड़ीगहराई के साथ प्रभाव पड़ा । राष्ट्र प्रेम को अनेक व्यक्तियों ने अपना व्यवस्था मानकर जनता का गला घोटनेलगे। दिन प्रतिदिनस्वार्थी नेताओं को संख्या बढ़ने लगी, और वे धीरे धीरे गांधी वादी सिद्धान्तों का हनन करने लगे ।

परिणामत: छल-कपट और मिथ्याभिमान से देश पर विपत्ति के बादल मंडराने लगे, शरणार्थी समस्या देशव्यापी राजनैतिक भ्रष्टाचार व विदेशी

आक्रमण, ७• राजनीति से प्रभावित मूल्य संक्रमण 4. से भारतीयनाट्य साहित्य भी अछूता न रहा । स्वतन्त्रता प्राप्ति केकुछ ही वर्षों में देश अनेक राजनीतिक दलों में विभाजित होने लगा । हिन्दू महासभा हिन्दुओं का एक मात्र राजनीतिक दलथा, जिसने सत्तारूढ़ दल कांग्रेस को अपना समर्थन दिया। आचार्य नरेन्द्र देव का कांग्रेस समाजवादी दल शनैःशनैः कई भागों में विघटित हो गया, एक दल प्रजा सोसलिस्टपार्टी के नेता अशोक मेहता तथा दूसरे दल समाजवादी दल के नेता राममनोहरलोहिया थे । राजगोपालाचार्य ने स्वतन्त्रपार्टी का गठन किया । तथा कांग्रेस विशिष्ट नेता एवं मन्त्री श्यामा प्रसादमुखर्जी ने जनसंघ का जिसकी प्राणप्रतिष्टा डा• हेडगेवार के राष्टीय स्वयं सेवक संघ द्वारा कीगयी, उसी समय जयप्रकाश नारायण देशकी राजनीति से सन्यास लेकर नान पालिटिकल आर्गनाइजेशन सर्वोदय में सम्मिलितहो गये । इसके बाद - मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिशील संगठन में राजनैतिक गतिविधियाँ प्रबल हो उठी । सर्वप्रथम केरल राज्य में साम्यवादियों ने कांग्रेस के दुर्भेद किले को भेद कर अपनी सरकार का गठन किया । ततकालीन प्रधानमन्त्री पं• नेहरू की विचारधारा से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का ढांचा चरमरा उठा । स्वातन्त्र्योत्तर भारत में जहाँ परमहात्मा गांधी महर्षिअरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, आदि आधुनिक भारतीय महापुरूषों ने देश को एकताके सूत्र में बाँधने की कामना कीथी, वहीं पर देश को जोड़ने वाले नेता देश को तोड़ने में लग गये । श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रधानमन्त्री बनने केबाद देश की स्थिति अत्यन्त डाँवाडोल होगयी । श्रीमती गाँधी की नीतियों का विरोध ततकालीन वरिष्ट कांग्रेसी नेताओं इन्दिरा जी का विरोध किया । और यहीं से राजनीति के क्षेत्र में दल बदल कीनीति और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला । इसी बीच पाकिस्तान फिर आक्रमण किया और पाकिस्तान के इरादों कोकुचलकर चातुर्य साहस, और निष्ठा का परिचय इन्दिरा जी ने दिया । श्रीमतीइन्दिरा गांधी की मृत्यु के पश्चात राजीव गांधी ने प्रधानमन्त्री पद को

शपथ ली । परन्तु देश में बढ़ रहे भ्रष्टाचार मुनाफा खोरी, वस्तुओं में मिलावट, चोर बजारी, देशद्रोहियों घुसपैठ, पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षित आतंकवादियों का पंजाब व कश्मीर में आतंक, लूटपाट, आगजनी, और भागती कराहती जनता के चीत्कार को वे भी रोकने में सक्षम न हो पाये । सन् 1990 में जनता दल की सरकार भारतीय जनता पार्टी के सहयोग से सत्ता में आयी, परन्तु दोनों की नीतियों मे पर्याप्त मतभेद होने के कारण उसे सफलता नहीं मिली । जहाँ पर जनता दल मुस्लिमकों इसाईयों, जैसे अल्पसंख्यकों और पिछड़ी जातियों का हिमायती था वहाँ पर भारतीय जनता पार्टी हिन्दुओं आदि बहुसंख्यकों की हिमायती थी । बढ़ती हुई मंहगाई और आबादी से देश त्रस्त होने लगा । राजीव गांधी की बमबिस्फोट से हत्या होने के बाद देश में एकबार फिर आतंकवाद ने अपना परिचय दिया । सन् 1991ई• के चुनाव में कांग्रेस को बहुमत मिलातथा नरसिंहाराव प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किये गये । परन्तु-मंहगाई, बेरोजगारी, आतंकवाद, और भ्रष्टाचार से देश को आज तक कोई छुटकारा न दिला सका । पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति से प्रभावित होकर देश का अधोपतन बढ़ता ही जा रहा है । शिक्षा तथा चलचित्रों के प्रचार प्रसाद से आजकी युवा पीढ़ी में कुंठित मनोवृत्ति आगयी है । 23•पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार प्रसाद के कारण आज फैशन परस्ती भौतिकता औरअनैतिकता को बढ़ावा मिला है । 24•युवा पीढ़ी नये और पुराने द्वन्द्व से पीड़ित होकर तिलमिला रहा है । युवा वर्ग मेंबढ़ते हुए आक्रोश और नारी जगत की खण्डित मनोवृत्तियों ने त्याग, तपस्या, और सदाचार की नींव हिला दी, आत्महत्या, अवैधप्रेम, नारी अपहरण, भूख, भोग और बलात्कार, छल, प्रपंच, औचित्य की सीमा में प्रविष्ट होने लगे 25• नयी मान्यताओं और औद्योगीकरण के फलस्वरूप - पारिवारिक ढांचा चरमरा उठा, दाम्पत्य जीवन मे ऊब, उदासी, एक रसता, और अजनबीपन की गंध छा गयी ।

आज जीवन के प्रति आधुनिक वौद्धिक दृष्टिकोण ने अनेकानेक जटिल समस्याओं को जन्म दिया है। प्रेम और सैक्स की समस्या आज सबसे बड़ी व्यापक समस्या है। ज्यों-ज्यों हम पाश्चात्य सभ्यता के निकट बढ़ते जा रहे हैं त्यों त्यों हमारे सामाजिक राजनैतिक, एवं आर्थिक, जीवन मूल्यों में परिवर्तन की गति बढ़ती जा रही है।

आज पुरातन पीढ़ी का नई पीढ़ी के प्रति जो आक्रोश है, संयुक्त परिवार प्रणाली व विवाह जैसे सामाजिक मान्यताओं के क्षेत्र में जो परिवर्तन देखने को मिलते हैं, 26. वह सब सम सामयिक नाटकों को देखा जा सकता है। प्रेम और सैक्स 27. सम्बन्धी मान्यताओं में आज जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है, समसामयिक नाटकों में उन्हें अभिव्यक्ति मिली है। आधुनिक मूल्यों के परिवर्तित होने के परिणामस्वरूप एवं नवीन मूल्यों के - अन्वेषण कथ्य और शिल्प के परिवर्तनों से आज का हिन्दी नाटक न रह सका।

सन्दर्भ सूची:

द्वितीय परिच्छेद

1. आचार्य वामन: काव्यालंकार सूत्रवृत्ति पृ० ५

2. आचार्य अभिनव गुप्त, अभिनव भारती

3. (अ) भरत मुनि नाट्य शास्त्र

(ब) राज शेखर : काव्य मीमांसा

4. नाट्य शास्त्र 1, 106

5. कालिदास: अभिज्ञान शाकुन्तलम्

6. नाट्य शास्त्र: पृष्ठ 1:110-12

7. राम गोपाल सिंह चौहान: हिन्दी नाटक साहित्य की पूर्ण पीठिका पृष्ट- 652

8. नगेन्द्र: हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास पृष्ट 477

10. भारत भूषण: चड्ढा, लक्ष्मी नारायण मिश्र के सामाजिक नाटक पृ. 1

11. डा. श्री पति शर्मा: हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव पृ. 222

12. रमेशगौतम सातवे दशक के प्रतीक नाटक पृ. 21

13. डा. दशरथ ओझा हिन्दी नाटक उदभव और विकास पृष्ट 172

14. डा. श्रीपति शर्मा: हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव पृष्ट 374

15. रमेशगौतम: सातवे दशक के प्रतीक नाटक पृष्ट 27

16. नाट्य संवाद (मध्य प्रदेश-साहित्य-परिषद) पृष्ट 59

(विसंगत हिन्दी नाटक और रंगमंच

17. नाटक या दृश्य काव्य - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ०

18. नई कविता आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, मुक्तिबोध पृ० १०

19. अशोक के फूल हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० 72

20. श्रीपत शर्मा:: हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव पृष्ट क, ६

21. द्रष्टव्य: आचार्य शंकर दत्त श्रेय जावड़ेकर आधुनिक भारत पृष्ठ 243

22. डी. आर. मानेकर: सन् 62 के अपराधी कौन पृष्ठ 27

23. मुद्राराक्षस: कर्फ्यू, पृष्ठ 83

24. नटरंग अंक 27, पृष्ठ 7 एकओर द्रोणाचार्य शंकर शेष

25. मुद्रा राक्षस : योर्स फेथफुल्ली, पृष्ठ 24.

26. डा० लक्ष्मी नारायण लाल, मादा कैक्टस पृष्ठ 47

27. मुद्राराक्षस योर्स फेथफुली पृष्ठ 18